

दयानन्ददिग्विजय महाकाव्य में रसौचित्य का स्वरूप

विश्वाची

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, सौन्दर्य तथा प्रभाव की व्याख्या करने वाले अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। इनमें रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, अलंकार तथा औचित्य प्रमुख हैं। इन सिद्धान्तों में आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा स्थापित औचित्यसिद्धान्त का अपना विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि यह काव्य के विभिन्न तत्त्वों के पारस्परिक सामञ्जस्य को स्थापित करता है। काव्य में प्रयुक्त शब्द, अर्थ, अलंकार, गुण, रस, पात्र, देश, काल तथा परिस्थिति सभी प्रभावशाली बनते हैं, जब उनका प्रयोग प्रसंगानुकूल हो।¹

काव्य में रस को प्राणतत्त्व स्वीकार किया गया है और रस की निष्पत्ति के लिए विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का उचित समन्वय आवश्यक माना गया है।² अतः रस की अभिव्यक्ति सभी प्रभावशाली होती है, जब उसका आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव तथा प्रसंग परस्पर अनुकूल हों। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य-सौन्दर्य का आधार स्वीकार करते हुए उसके विविध रूपों का निरूपण किया। उनके अनुसार काव्य में किसी भी तत्त्व का प्रयोग उसके उचित स्थान और उचित परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिए। विशेषतः रस के सम्बन्ध में औचित्य का महत्त्व अत्यधिक है, क्योंकि रस काव्य के आस्वाद का प्रमुख आधार है। यदि रस की निष्पत्ति के लिए आवश्यक तत्त्वों में असंगति उत्पन्न हो जाए तो रस का प्रभाव क्षीण हो जाता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में आचार्य मेधाव्रत प्रणीत 'दयानन्ददिग्विजय' महाकाव्य में अभिव्यक्त विभिन्न रसों का औचित्यपरक अध्ययन किया गया है। महाकाव्य में श्रृंगार, वीर, करुण, भयानक, बीभत्स, शान्त, अद्भुत तथा रौद्र रसों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ कुछ स्थलों पर रसगत अनौचित्य की सम्भावना का भी विवेचन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कवि मेधाव्रताचार्य ने महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व, उनके संघर्ष, वैचारिक जीवन, सामाजिक चेतना तथा आध्यात्मिक साधना के अनुरूप रस-योजना की है।

आचार्य मेधाव्रत द्वारा प्रणीत 'दयानन्ददिग्विजय' महाकाव्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन, व्यक्तित्व, संघर्ष, वैचारिक चेतना तथा समाज-सुधारक स्वरूप को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। इस महाकाव्य में 27 सर्ग तथा 2700 श्लोक हैं। महाकाव्य में महर्षि दयानन्द के जीवन से सम्बन्धित विविध घटनाओं के चित्रण के कारण अनेक रसों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से हुई है। कहीं उनके साहस और संघर्ष से वीर रस की निष्पत्ति होती है, कहीं जीवन की विपत्तियों और वियोगपूर्ण प्रसंगों से करुण रस उत्पन्न होता है, कहीं उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व से शान्त रस की अनुभूति होती है तथा कहीं प्रकृति और जीवन की विलक्षण घटनाएँ अद्भुत रस को जन्म देती हैं।

अतः 'दयानन्ददिग्विजय' में रस-योजना का अध्ययन औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य केवल महाकाव्य में प्रयुक्त रसों की पहचान करना नहीं है, अपितु यह देखना है कि कवि ने विभिन्न प्रसंगों, पात्रों और परिस्थितियों के अनुरूप रसों की योजना किस प्रकार की है और वह योजना काव्यगत औचित्य की कसौटी पर कितनी सार्थक सिद्ध होती है।

औचित्य क्या है ? इस विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं-

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।

उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।³

अर्थात् जो जिसके अनुरूप हो, उसे उस वस्तु के लिए उचित कहते हैं तथा उचित के इस भाव को ही औचित्य कहते हैं। अथवा इस प्रकार भी कह सकते हैं- **यत्किल यस्यानुरूपं तदुचितमुच्यते, तस्य भावमौचित्यं कथयन्ति।।⁴** जो जिसके अनुरूप है, उसे उसके लिए उचित कहते हैं तथा उचित के इस भाव को ही औचित्य कहते हैं। 'उचित' शब्द से भाववाचक 'ष्यञ्' प्रत्यय के योग से 'औचित्य' शब्द सिद्ध होता है। उचित शब्द की सिद्धि दो धातुओं से की जा सकती है- उच् समवाये⁵ तथा वच् परिभाषणे⁶। 'औचित्य' का सामान्य अर्थ है—उचितता, अनुकूलता अथवा यथास्थान प्रयोग। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से औचित्य का तात्पर्य काव्य के प्रत्येक तत्त्व के उसके अनुकूल देश, काल, पात्र, परिस्थिति और प्रसंग के अनुसार प्रयोग से है। आचार्य ने काव्यशरीर में जीवनाधायक औचित्य के 27 भेदों को स्वीकार किया है।⁷ रस के सन्दर्भ में औचित्य का विशेष महत्त्व इसलिए है कि रस की अनुभूति केवल स्थायीभाव के उल्लेख से नहीं होती, बल्कि उसके लिए उपयुक्त विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का समुचित संयोग आवश्यक है।

रसौचित्य का तात्पर्य किसी प्रसंग में ऐसे रस की योजना से है, जो पात्र, परिस्थिति और भावभूमि के अनुरूप हो। उदाहरणतः युद्धभूमि में उत्साह और पराक्रम का चित्रण वीर रस के अनुकूल है, मृत्यु, वियोग अथवा विपत्ति में शोक और करुणा का चित्रण करुण रस के अनुकूल है तथा वैराग्य और आत्मज्ञान से सम्बन्धित प्रसंगों में शान्त रस की योजना स्वाभाविक रूप से उपयुक्त मानी जाती है।

इस प्रकार रसौचित्य में दो पक्ष विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं—पहला, रस के लिए उपयुक्त भावभूमि का निर्माण और दूसरा, उस भावभूमि के अनुरूप भाषा, बिम्ब, पात्र एवं क्रियाओं का प्रयोग। 'दयानन्ददिग्विजय' में इन दोनों पक्षों की पर्याप्त अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

रसौचित्य को प्रदर्शित करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं-

कुर्वन्सर्वाशये व्याप्तिमौचित्यरुचिरो रसः।

मधुमास इवाशोकं करोत्यङ्कुरितं मनः।।⁸

अर्थात् औचित्य से रुचिकर बनाया हुआ शृङ्गार आदि रस सभी के हृदयों में व्याप्त होता हुआ उसी प्रकार से सहृदयों के मन को प्रफुल्लित कर देता है, जैसे वसन्त ऋतु अशोक वृक्ष को प्रफुल्लित कर देती है।

शृङ्गाररसौचित्य के उदाहरण के रूप में आचार्य क्षेमेन्द्र महाकवि कालिदास विरचित कुमारसम्भव महाकाव्य का उदाहरण देते हैं-

बालेन्दुवक्राव्यविकासभावाद् बभुः पलाशान्यतिलोहितानि।

सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्।।

यहाँ कवि को तृतीय सर्ग में पार्वती एवं परमेश्वर के परस्पर अभिलाषमूलक शृङ्गार का वर्णन करना है। अतः उससे पूर्व वसन्त का नायक के रूप में एवं वनस्थली का नायिका के रूप में अभेद आरोप स्थापित कर, उन नायिकाओं के कुचों पर वक्र तथा लाल पलाशकोरकों की नखक्षत के रूप में उत्प्रेक्षा अग्रिम वर्णनीय शृङ्गार रस के उद्दीपन विभावों के वर्णन के अनुरूप होने से परम औचित्य की सुन्दरता को प्रतिपादित करती है।

परन्तु आचार्य क्षेमेन्द्र महाकवि कालिदास के इस श्लोक में शृंगारविषयक अनौचित्य को भी दर्शाते हैं-

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।

प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥

यहाँ कवि ने कर्णिकार पुष्प के वर्णन प्रसङ्ग में विधाता की निन्दा ही की है। ऐसा वर्णन नहीं किया जो प्रकृत शृंगार रस के उद्दीपन विभाव के अनुरूप हो। अतः यहाँ रस विषयक अनौचित्य है। अतः वर्णन सदैव प्रकृत रस के उद्दीपन विभाव के अनुरूप ही होना चाहिए।

महाकाव्य में शृङ्गार रस की अपेक्षा वीर, करुण, शान्त आदि रसों की प्रधानता दिखाई देती है, क्योंकि इसका मुख्य विषय महर्षि दयानन्द का जीवन-संघर्ष और समाज-सुधारक व्यक्तित्व है। फिर भी जहाँ वियोग और प्रेम की भावभूमि निर्मित होती है, वहाँ कवि ने शृङ्गार के विप्रलम्भ पक्ष का प्रयोग किया है।

हरिणी मृगचारुलोचने! जलमन्त्रं त्वद्वते न गृह्णीति।

भवतीमनिरीक्ष्य साम्प्रतं वद सा कां नु दशां गमिष्यति॥⁹

इस प्रसंग में मूलशंकर अपनी दिवंगत बहिन को स्मरण करते हुए उस हरिणी की स्थिति का वर्णन करते हैं, जो बहिन के वियोग में अन्न-जल तक ग्रहण नहीं करती थी। यहाँ प्रिय व्यक्ति के वियोग से उत्पन्न वेदना को हरिणी के व्यवहार के माध्यम से व्यक्त किया गया है। वियोग की यह भावभूमि विप्रलम्भ शृङ्गार के अनुरूप है। इस प्रकार प्रियजन के वियोग, स्मृति और उससे सम्बद्ध संवेदना का चित्रण विप्रलम्भ शृङ्गार रसौचित्य को पुष्ट करता है।

वीररसौचित्य का उदाहरण आचार्य क्षेमेन्द्र अपनी ही रचना नीतिलता से प्रस्तुत करते हैं-

स्त्रीणां मध्ये सलीलं भ्रमितगुरुगदाघातनिर्नष्टसंज्ञः

सद्यो वध्योऽभवस्त्वं पशुरिव विवशस्तेन राज्ञाऽर्जुनेन।

तस्य च्छेत्तापि योऽसौ सकलनृपरिपुर्जामदग्न्यो भुजानां

जित्वोच्चैः सोऽपि येन द्विज इति न हतस्तापसस्त्वेष रामः॥

अर्थात् जिस कार्तवीर्यार्जुन ने स्त्रियों के सामने ही अपनी गदा के आघात से तुम्हें बेहोश कर दिया था और पशुओं के समान कातर एवं विवश होकर तुम्हें मरने के लिए बाध्य भी कर दिया था, उस कार्तवीर्यार्जुन के हजारों हाथों को काटने वाले परशुराम को भी जिसने भली प्रकार से जीत कर केवल ब्राह्मण होने के कारण ही नहीं मारा, ये वही तपस्वी राम हैं।

यहाँ पर रावण से कार्तवीर्यार्जुन का, कार्तवीर्यार्जुन से परशुराम का तथा परशुराम से रामचन्द्र के वीरतापूर्वक कार्यों के क्रमिक उत्कर्ष का वर्णन है। जो प्रधान नायक की वीरता को दर्शाने के लिए उचित है। अतः यह वर्णन वीररसौचित्य के अनुरूप ही किया गया है।

‘दयानन्ददिग्विजय’ में वीर रस का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण स्वयं महर्षि दयानन्द का जीवन है, जिसमें सत्य की स्थापना, पाखण्ड का विरोध, शास्त्रार्थ, वैचारिक संघर्ष और कठिन परिस्थितियों में भी लक्ष्य के प्रति अडिग रहने की भावना विद्यमान है। उदाहरण रूप में कतिपय श्लोक अधोलिखित हैं-

कृपादरिद्रोग्रकृपाणपाणयः प्रचण्डकोदण्डविमुक्तमार्गणाः।
अरातिदन्तीन्द्रमृगाधिपाङ्गना रणे विरेजू रणचण्डिका इव।।¹⁰

यहाँ युद्ध के अवसर पर भारतीय स्त्रियों के हाथों में तीक्ष्ण तलवार, धनुष और बाण का चित्रण किया गया है। सामान्यतः स्त्री को कोमलता और करुणा से सम्बद्ध किया जाता है, किन्तु युद्ध-परिस्थिति में वही स्त्री रणचण्डिका के समान उग्र और पराक्रमी दिखाई देती है। यहाँ परिस्थिति के अनुरूप स्वभाव में परिवर्तन का चित्रण वीर रस को पुष्ट करता है। अतः युद्धभूमि और शत्रु-संघर्ष की स्थिति में वीरता का ऐसा चित्रण सर्वथा औचित्यपूर्ण है।

महर्षि दयानन्द के बौद्धिक पराक्रम का चित्रण भी वीर रस के माध्यम से किया गया है—

सदोवनान्ते प्रतिवादिदन्तिनो भयंकरोङ्कारनिनादगर्जितम्।
मृगेश्वरस्येव मुनीश्वरस्य तं निशम्य संशिथिधिरे दिशो द्रुतम्।।¹¹

यहाँ दयानन्द के ओजस्वी ओङ्कारनाद की तुलना सिंह की गर्जना से की गई है। प्रतिवादी विद्वानों का दिशाओं में भाग जाना उनके बौद्धिक प्रभाव को प्रकट करता है। विशेष रूप से 'मृगेश्वरस्येव' तथा 'गर्जितम्' जैसे पद वीर भाव को तीव्र करते हैं। यहाँ वीरता शारीरिक युद्ध की न होकर ज्ञान और तर्क की शक्ति के रूप में सामने आती है। इसलिए इसे धर्मवीर की भावभूमि से सम्बद्ध किया जा सकता है।

महर्षि के संघर्षशील जीवन का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

प्रालेयाद्रे शैलश्रृंगे तटिन्या घोरे तीरे दुर्गमारण्यमार्गे।
प्राणान्ते यः क्लेशजालेऽपि धैर्यं नैवाहासीत्साहसं तस्य वन्द्यम्।।¹²

हिमाच्छादित पर्वतों, नदी के दुर्गम तटों तथा कठिन वनमार्गों में प्राणान्तक कष्ट सहते हुए भी दयानन्द के धैर्य न छोड़ने का चित्रण किया गया है। यहाँ कठिन परिस्थितियाँ उद्दीपन का कार्य करती हैं और उनका अटूट धैर्य उत्साह को पुष्ट करता है। अतः वीरता को केवल युद्ध तक सीमित न रखकर आत्मबल और संकल्प के रूप में प्रस्तुत करना वीररसौचित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

करुणरसौचित्य का उदाहरण आचार्य क्षेमेन्द्र अपनी ही कृति मुनिमतमीमांसा से प्रस्तुत करते हैं-

प्रत्यग्रोपनताभिमन्युनिधने हा वत्स हा पुत्रके
त्यश्वमद्रावि सुभद्रया प्रलपितं पार्थस्य यत्तत्पुत्रः।
येनोद्वाष्पविमुक्तशष्पकवलैः सेनातुरङ्गैरपि
न्यञ्जत्पार्श्वगतैककर्णकुहरैर्निःस्पन्दमन्दं स्थितम्।।

यहाँ पर पुत्र के सद्यःप्राप्त अप्रियतर वियोग से उत्पन्न शोक नामक स्थायी भाव के अनुरूप पत्थरों को भी पिघला देने वाला तथा हृदय को द्रवित कर देने वाला सुभद्रा के द्वारा किया गया विलाप अर्जुन के हृदय में प्रतिफलित होकर न केवल उद्दीप्तता को प्राप्त हुआ, अपितु वह अश्व आदि पशुओं के हृदय में भी करुण रस का सञ्चारक सिद्ध हुआ, जो कि उनके आँसू बहाने, घास का परित्याग करने तथा निष्प्रेष्ट होकर खड़े रहना आदि अनुभावों द्वारा व्यक्त होकर करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति कर रहा है।

महर्षि दयानन्द के जीवन में अनेक ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें वियोग, कष्ट, मृत्यु और सामाजिक दुर्दशा का चित्रण मिलता है। ऐसे प्रसंगों में कवि ने करुण रस का उचित प्रयोग किया है।

कवि तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखता है—

**अनेकपत्नीः परिणीय कम्प्रो यूनां गणो भारतवंशजातः।
भोगातिसंगात्स्वरगादकाण्डे निपात्य भार्या विरहाग्निकुण्डे।।¹³**

यहाँ अनेक विवाह, विषय-भोग में आसक्ति और अल्पायु में मृत्यु के कारण स्त्रियों के वैधव्य की करुण स्थिति का चित्रण है। इस प्रकार का सामाजिक चित्रण पाठक के मन में शोक, दया और सहानुभूति उत्पन्न करता है। अतः यहाँ करुण रस का प्रयोग विषयानुकूल है।

दयानन्द के संन्यासी जीवन के कष्टों का वर्णन भी करुण भाव को उत्पन्न करता है—

**वासांस्यासन्नल्पमात्राणि गात्रे शीतो वातो देहभिद् बाणतुल्यः।
क्लान्तः कायः क्षुत्पिपासाकुलत्वा दस्याभूतद्वैमखण्डं स आदत्।।¹⁴**

अल्प वस्त्र, तीव्र शीत, भूख-प्यास और थके हुए शरीर का चित्रण महर्षि के कठोर संन्यासी जीवन को सामने लाता है। 'शीतो वातो देहभिद् बाणतुल्यः' में शीत हवा को शरीर को भेदने वाले बाण के समान बताया गया है, जिससे कष्ट की तीव्रता स्पष्ट होती है। यहाँ परिस्थिति करुण रस की निष्पत्ति के लिए पूर्णतः उपयुक्त है।

भयानक रसौचित्य के सन्दर्भ में आचार्य क्षेमेन्द्र श्रीहर्ष की रत्नावली से यह पद्य उद्धृत करते हैं-

नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा

मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।

पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं

कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशंकिनः।।

यहाँ बानर के तीव्र अभिसरण के कारण भय से भयभीत होकर अन्तःपुर में रहने वाले स्वयं को पुरुषों की श्रेणी में न समझने वाले वृद्ध, वामन, किरात, कुबड़े आदि के धैर्यविहीन तथा कातर हो कर इधर-उधर छिपने लगे। उनकी उनके स्वभाव के अनुरूप उक्त चेष्टारूप उचित अनुभावों के वर्णन से भयानक रस का परिपोष करने वाले मनोहारी औचित्य का प्रकाशन हो रहा है। अतः यहाँ भयानकरसौचित्य है।

भयानक रस का प्रभाव भयजनक परिस्थिति, एकान्त, अन्धकार, हिंसक पशु अथवा अनिश्चित संकट की उपस्थिति से उत्पन्न होता है। 'दयानन्ददिग्विजय' में महर्षि के जीवन से सम्बन्धित वन-प्रसंगों में इसका उपयुक्त चित्रण मिलता है-

वितथभूतभयाकुलमानसः झटिति तन्मठमैदथ संयमी।

शिशुवयोविनिवेशितवासना बलवतामपि भीषयते मनः।।¹⁵

एक बार मूलशंकर रात्रि में वृक्षों के नीचे समाधि लगाने के लिए बैठे परन्तु वृक्ष से भयानक आवाज सुनकर भयभीत हो गए क्योंकि बचपन के संस्कार (भूत होते हैं) ने इनको विचलित कर दिया। बाल्यकाल के गहरे संस्कार कितने शक्तिशाली होते हैं कि साधारण व्यक्ति के बजाय एक संयमी और बलवान व्यक्ति को भी भयभीत कर सकते हैं। यदि कोई कायर व्यक्ति डरता तो इसमें कोई काव्य चमत्कार नहीं होता परन्तु एक वीर और संयमी पुरुष का भयभीत होना भयानक रसौचित्य को परिपुष्ट कर रहा है। यहाँ भय स्थायि भाव, वितथ भूत आलम्बन विभाव, रात्रि का समय और एकान्त उद्दीपन विभाव, शारीरिक चेष्टाएं- मन का व्याकुल होना, आश्रम में लौट आना और डर, शंका, मोह इत्यादि संचारी भाव की उपस्थिति के कारण भयानक रसौचित्य की सुन्दर निष्पत्ति हुई है।

**भीमाकारो भल्लुकः कृष्णवर्णो दूराद्धावन् रंहसैकः समक्षम्।
दृष्टोऽकस्माद् योगिनात्रान्तरेऽयं गर्जन् प्राप्तस्तस्थिवान् पश्चिमांघ्रोः।।¹⁶**

यहाँ भयानक रस के सभी तत्त्व विद्यमान हैं, जैसे- योगी के मन में उत्पन्न हुआ भय स्थायीभाव है, भल्लुकः आलंबन विभाव है, भय को उद्दीप्त करने वाले शब्द भीमाकारो, कृष्णवर्णः, दूराद्धावन्, अकस्माद्दृष्टो, गर्जन् समक्षम् आदि उद्दीपन विभाव हैं, भय उत्पन्न होने पर योगी की शारीरिक चेष्टाएं अनुभाव हैं तथा भय के साथ-साथ मन में आने वाले क्षणिक भाव त्रास, शंका, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

यहाँ प्रसंगानुकूल भयानक रस का चित्रण किया गया है क्योंकि योगी की घने वन में खोज तथा हिंसक पशु का मिलना एक स्वाभाविक तथा अपेक्षित घटना है। कवि ने भय को चरम सीमा तक पहुँचाने के लिए सटीक शब्दों का चयन किया है। यह घटना योगी के चरित्र को और अधिक उभारने का अवसर प्रदान करती है कि इस भयानक स्थिति में योगी की अग्रिम प्रतिक्रिया क्या होगी? इस प्रकार इस पद्य में भयानक रस का प्रयोग सर्वथा औचित्यपूर्ण होने से भयानकरसौचित्य है।

बीभत्सरसौचित्य के विषय में आचार्य क्षेमेन्द्र मुनिमतमीमांसा का पद्य प्रस्तुत करते हैं-

सर्वापायचयाश्रस्य नियतं कुत्सानिकायस्य किं

कायस्यास्य विभूषणैः सुवसनैरानन्दनैश्चन्दनैः।

अन्तर्यस्य शकृद्यकृत्कृमिकुलक्लोमान्तमालाकुले

क्लेदिन्यन्तदिने प्रयान्ति विमुखाः कौलेयकाका अपि।।

यहाँ वैराग्य की भावना से मिश्रित बीभत्स रस के स्थायीभीव जुगुप्सा के अनुरूप शरीरगत घृणित अन्तर्दी आदि का वर्णन किया गया है। जिससे साररहित शरीर के प्रति गर्व को समाप्त करने वाली भावना परिपुष्ट हो रही है। अतः यहाँ बीभत्सरसविषयक औचित्य है।

‘दयानन्ददिविजय’ में मांस-भक्षण के निषेध तथा पाखण्डपूर्ण आचरण की निन्दा के प्रसंगों में बीभत्स भाव की योजना की गई है।

मांस-भक्षण के प्रसंग में दयानन्द कहते हैं—

**मांसभक्षणमहो द्विजस्य ते साम्प्रतं न विधिनिन्दितं हि तत्।
ग्लानिकृन्तु पललं विलोकने रोचतां तदशनं कथं नु मे।।¹⁷**

बीभत्स रस का स्थायीभीव ‘जुगुप्सा’ अर्थात् घृणा है। श्लोक की पंक्ति ‘ग्लानिकृन्तु पललं विलोकने’ अर्थात् मांस को देखने मात्र से ही ग्लानि या घृणा उत्पन्न होती है। स्पष्टतः बीभत्स रस का आलम्बन करती है। यहाँ मांस को एक घृणित वस्तु के रूप में चित्रित किया गया है, जो बीभत्स रस का मुख्य अवयव है। यहाँ वक्ता स्वामी दयानन्द एक सात्विक और पवित्र विचार रखने वाले महापुरुष हैं। उनके मुख से मांस के प्रति घृणा का भाव प्रकट होना पूर्णतः उचित है। इस श्लोक का उद्देश्य मांस-भक्षण का निषेध करना है। किसी वस्तु से व्यक्ति को दूर करने के लिए सबसे प्रभावी तरीका उसे उस वस्तु के प्रति घृणा (बीभत्स भाव) अनुभव कराना है। यहाँ बीभत्स रस का प्रयोग मांस-भक्षण के विरुद्ध वैराग्य उत्पन्न करने के लिए किया गया है।

शान्तरसौचित्य के लिए आचार्य क्षेमेन्द्र इस पद्य को उपस्थापित करते हैं-

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम्।
माने म्लानिभयं जये रिपुभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वे नाम भवे भवेद्भयमहो वैराग्यमेवाभयम्॥

इस पद्य में सभी मनुष्यों के लिए अभिप्रेत भोग, सुख, धन आदि को भयप्रद प्रदर्शित कर इनकी त्याज्यता दिखलाकर, समस्त भयों के विनाशक वैराग्य की जो ग्राह्यता प्रदर्शित की गयी है, इससे शान्त रस का उचित परिपोष होता है। अतः यहाँ शान्तरसौचित्य है।

दयानन्द के व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनका आध्यात्मिक और वैराग्यपूर्ण स्वरूप है। अतः उनके जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों में शान्त रस की योजना विशेष रूप से स्वाभाविक है।

आचार्य मेधाव्रत महर्षि दयानन्द के लोककल्याणकारी कार्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

वाटवीध्वान्तपथाभिगामिनं मनुष्यसंघं विषयापगाप्लुतम्।
प्रबोधदीपप्रभया मुनीश्वरः प्रकाशकस्तम्भ इवोददीधरत्॥¹⁸

यहाँ संसार को अज्ञानरूपी वन और विषयों को नदी के रूप में चित्रित किया गया है। महर्षि दयानन्द को प्रकाश-स्तम्भ के समान बताया गया है, जो ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान में भटकते मनुष्यों को मार्ग प्रदान करते हैं। ज्ञान, वैराग्य, आत्मसंयम तथा लोककल्याण की भावना शान्त रस की भावभूमि का निर्माण करती है। अतः यहाँ शान्तरसौचित्य स्पष्ट है।

इसी प्रकार महर्षि के जन्म के उद्देश्य का वर्णन करते हुए उद्धृत करते हैं—

इति करुणदशामवेक्ष्य भूमेर्दुरिततमोदलनाय दिव्यधामा।
भुवनहितकरः प्रकाशितोऽयं रविरिव विश्वसृजा व्रती महर्षि॥¹⁹

यहाँ महर्षि दयानन्द की तुलना सूर्य से की गई है, जो अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करता है। यह तुलना ज्ञान, प्रकाश और लोककल्याण की भावना से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त यहाँ महर्षि दयानन्द के जन्मोद्देश्य के विषय में बताया गया है। महर्षि का उद्देश्य 'दुरिततमोदलनाय' अर्थात् पापरूपी अन्धकार का नाश करना तथा 'भुवनहितकरः' अर्थात् लोक कल्याण है। जिस प्रकार सूर्य बिना किसी कोलाहल के शान्त रहकर अन्धकार को दूर करता है, उसी प्रकार ऋषि का शान्त ज्ञान प्रकाश संसार के क्लेशों को दूर करने में समर्थ है। इसलिए यह शान्त रस की भावभूमि को पुष्ट करता है।

अद्भुतरसौचित्य के रूप में आचार्य क्षेमेन्द्र कवि चन्दक का श्लोक उपस्थापित करते हैं-

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्याननम्।
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने दृष्ट्वा समस्तं जग
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः॥

यहाँ धूल से सने हुए अंगों, हाथ आदि प्रमाणों से लक्षित मिट्टी खाने के आक्षेप से उद्यत माता यशोदा के भय से चकित मिट्टी खाने की बात को छिपाने वाले शिशु कृष्ण के द्वारा फैलाये गये मुख के अन्दर समस्त जगत् के दर्शन से और उस बालक के प्रभाव से अनभिज्ञ वात्सल्य से विह्वल माता के विस्मय के औचित्य से अद्भुत रस अतिशय को प्राप्त हो जाता है।

‘दयानन्ददिग्विजय’ में प्रकृति और ईश्वर की सृष्टि के वर्णन में अद्भुत रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। रचनाकार शरत्कालीन रात्रि का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

**तारामौक्तिकमालां सा दधाना चन्द्रिकाम्बरम्।
शरदिन्दुमुखी चक्रे रजनी स्वागतं मुदा।।²⁰**

शरत्कालीन शुक्लपक्ष का अपना एक विशेष ही महत्त्व है। इस समय आकाश एकदम स्वच्छ होता है तथा नक्षत्रगण स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे समय में शरत्कालीन चन्द्रमुखी निशादेवी मानो चाँदी के वस्त्र पहनकर तथा तारों की मुक्तामणि माला धारण कर दयानन्द का स्वागत करने के लिए उपस्थित हुई हो, ऐसा अद्भुत दृश्य दिखाई दे रहा है। यहाँ रात्रि को एक चन्द्रवदना स्त्री के रूप में चाँदनी के वस्त्रों से सुसज्जित तथा मुक्तामणि से अलंकृत होकर दयानन्द के स्वागत के लिए उत्सुक दिखाया है जो आश्चर्य तथा आनन्द को उत्पन्न कर रहा है। अतः यहाँ अद्भुत रसौचित्य है।

ईश्वर की सृष्टि का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार आचार्य मेधाव्रत कहते हैं—

**निसर्गसौन्दर्यमयीं विधातुः शिल्पोत्तमादर्शनिदर्शनीयाम्।
अनन्तशक्तेः स विलोक्य सृष्टिं व्यचिन्तयद् वैभवमीशबुद्धेः।।²¹**

यहाँ आलम्बन विधाता की सृष्टि है। जब कोई रचना ‘अनन्तशक्ति’ द्वारा निर्मित हो और ‘निसर्गसौन्दर्यमयी’ हो, तो वह स्वाभाविक रूप से देखने वाले के मन में विस्मय का भाव उत्पन्न करती है। ऐसी अलौकिक रचना को देखकर आश्चर्य का भाव जागृत होना पूर्णतः उचित है। ‘शिल्पोत्तमादर्श’ अर्थात् शिल्प कला की परिपक्वता या श्रेष्ठता और उसका ‘निदर्शनीयाम्’ अर्थात् अतुलनीय या अद्भुत होना विस्मय के भाव को और अधिक उद्दीप्त कर देता है। इसप्रकार ईश्वरीय रचना की जटिलता और सुन्दरता को देखकर बुद्धि का चकित हो जाना अद्भुत रस की पुष्टि करता है।

यहाँ कवि ने केवल वाह्य सुन्दरता को नहीं देखा, अपितु उस सुन्दरता के पीछे ‘ईशबुद्धि’ के वैभव को पहचाना है। साधारण वस्तु को देखकर आश्चर्य होना सामान्य है, किन्तु सम्पूर्ण सृष्टि में ईश्वर की बुद्धिमत्ता के दर्शन करना अद्भुत रसौचित्य को दर्शाता है।

रौद्ररसौचित्य उदाहरण के रूप में कवि भट्टनारायण का आचार्य क्षेमेन्द्र यह पद्य प्रस्तुत करते हैं

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां

यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा।

यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्च यश्च प्रतीपः

क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमपि जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम्।।

यहाँ पर द्रोणवध के उपरान्त अश्वत्थामा की क्रोधस्वरूप विष की उसी विषम व्यथा का वर्णन है, जो क्रूर क्रोध रूपी स्थायीभाव वाले जीवन्त रौद्र रस के अनुरूप द्रुपदकुल के शिशु, वृद्ध और गर्भस्थ शिशु की हत्या में खड्ग चलाने रूप कार्य से अश्वत्थामा की मोहाच्छन्न मनःस्थिति का बोध कराती है। अतः यहाँ रौद्र रस का जो चित्रण है, वह सहृदयों के हृदय में प्रतिबिम्बित होकर एक अपूर्व भय को उत्पन्न कर देता है। अतः यह रौद्ररसौचित्य का सुन्दर उदाहरण है।

महाकाव्य में रौद्र रस का प्रयोग मुख्यतः विरोध, क्रोध तथा परम्परा और नवीन विचारों के संघर्ष से सम्बन्धित प्रसंगों में हुआ है।

दयानन्द के संन्यास ग्रहण करने पर उनके पिता का क्रोध इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

**प्रतिघवेगवशो जनकोऽञ्जसा सुतपटं विददार करस्थितम्।
समभिगृह्य कमण्डलुमक्षिपत्भुवि विनिन्द्यगिरा तमतर्जयत्।।²²**

यहाँ स्वामी दयानन्द के जीवन की एक घटना का वर्णन है, जहाँ उनके पिता उन पर अत्यधिक क्रोधित होते हैं। श्लोक में पिता का दयानन्द के प्रति क्रोध स्थायी भाव, पुत्र (दयानन्द) जिन्होंने ने पिता की मान्यताओं के विरुद्ध आचरण किया आलम्बन है। दयानन्द द्वारा परम्पराओं का त्याग और संन्यास का मार्ग स्वीकार करना उद्दीपन है तथा पिता ने दयानन्द के कपड़ों को जल्दी से फाड़ दिया, कमण्डलु को छीनकर जमीन पर पटक दिया और अपशब्दों में उसे धमकाने लगे- ये सभी शारीरिक चेष्टाएँ रौद्र रस को पूर्ण करती हैं।

एक पारम्परिक और रूढ़िवादी पिता के लिए उसका पुत्र जब कुल की परम्पराओं के विरुद्ध जाता है, तो उसका इस प्रकार उग्र होना स्वाभाविक और चरित्र के अनुकूल है। यहाँ क्रोध का चित्रण पिता की मानसिक स्थिति के अनुसार उचित है।

रसविषयक अनौचित्य-

कवि ने जहाँ अनेक स्थलों पर रसों का सफल प्रयोग किया है, वहीं कुछ स्थलों पर रसगत अनौचित्य की सम्भावना भी दिखाई देती है। उदाहरणतः गुरुवर दण्डी के प्रसंग में—

**कन्दर्पदुर्मदेभेन्द्रोद्दामदर्पविदारणे।
मृगेन्द्रोच्चण्डवीर्योऽभूद् दण्डी दोर्दण्डमण्डितः।।²³**

यहाँ दण्डी संन्यासी के लिए 'दोर्दण्डमण्डितः' अर्थात् शक्तिशाली भुजाओं से सुशोभित और 'मृगेन्द्र' अर्थात् सिंह के समान पराक्रमी विशेषण शब्दों का प्रयोग किया गया है। संन्यासी का मुख्य गुण शान्ति, वैराग्य और आत्म-संयम होता है। कामदेव पर विजय प्राप्त करना एक आन्तरिक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। इसे शारीरिक शक्ति और 'प्रचण्डवीर्यशाली बाहुदण्डों' के माध्यम से व्यक्त करना वीररस विषयक अनौचित्य को उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार गुरु के स्वर्गवास के प्रसंग में कवि कहता है—

**विद्यागुरोः स्वर्गमनं निशम्य श्रीमद्दयानन्दमुखाम्बुजं तत्।
म्लानिं बभाराशनिपातदूनं वल्लीप्रसूनं मृदुलं यथेदम्।।²⁴**

गुरु के अवसान पर हृदय की मर्मभेदी वेदना को दिखाने के लिए वज्रपात से मुरझाए पुष्प की उपमा काव्यशास्त्रीय दृष्टि से थोड़ी शिथिल है। वज्र का प्रहार भौतिक विनाश का प्रतीक है, जबकि गुरु-वियोग एक आध्यात्मिक और मानसिक शून्यता है। इस प्रकार यहाँ करुणरस के सन्दर्भ में भयानक रस का मिश्रण होने से अनौचित्य की उत्पत्ति हो रही है।

इस प्रकार कवि की रस-योजना केवल भावाभिव्यक्ति का साधन नहीं है, बल्कि महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व को विभिन्न भाव-आयामों में उद्घाटित करने का माध्यम भी है। जहाँ पात्र, परिस्थिति और भाव के मध्य सामञ्जस्य स्थापित होता है, वहाँ रसौचित्य काव्य-सौन्दर्य को पुष्ट करता है; वहीं पात्र या भाव के अनुरूपता से विचलन होने पर रसगत अनौचित्य की स्थिति उत्पन्न होती है।

‘दयानन्ददिग्विजय’ महाकाव्य में रस का औचित्यपरक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि कवि ने महर्षि दयानन्द के जीवन की विविध घटनाओं को विभिन्न भावभूमियों के माध्यम से प्रभावशाली बनाया है। महाकाव्य की विषयवस्तु में जहाँ संघर्ष और सत्यस्थापन के प्रसंग हैं, वहाँ वीर रस; जहाँ मृत्यु, वियोग और सामाजिक पीड़ा है, वहाँ करुण रस; जहाँ आध्यात्मिक चेतना और वैराग्य है, वहाँ शान्त रस; जहाँ भयजनक परिस्थितियाँ हैं, वहाँ भयानक रस तथा जहाँ विस्मयकारी प्रकृति और असाधारण व्यक्तित्व का चित्रण है, वहाँ अद्भुत रस की योजना दिखाई देती है।

विशेष रूप से महर्षि दयानन्द के चरित्र के साथ रसों का सम्बन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनका वीर रूप सत्य और तर्क की स्थापना में दिखाई देता है, करुण रूप उनके जीवन के संघर्षों में तथा शान्त रूप उनके वैराग्य और आध्यात्मिक चेतना में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार विभिन्न रस उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करते हैं।

महाकाव्य में कुछ स्थलों पर रसगत अनौचित्य की सम्भावना भी दिखाई देती है। इससे यह तथ्य पुष्ट होता है कि औचित्य केवल रस की उपस्थिति का नाम नहीं है, बल्कि पात्र, प्रसंग, भाव, विभाव और भाषा के मध्य उचित सामञ्जस्य का नाम है। अतः ‘दयानन्ददिग्विजय’ का रस-विधान औचित्य सिद्धान्त की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है और यह महाकाव्य की भाव-संरचना तथा काव्य-सौन्दर्य को समझने के लिए उपयोगी आधार प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(अ) मूलग्रन्थ

1. दयानन्ददिग्विजयम् (पूर्वार्ध)- आचार्य मेधाव्रत, अनु.- श्रुतबन्धु शास्त्री, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय नरेला, दिल्ली 1995
2. दयानन्ददिग्विजयम् (उत्तरार्ध)- आचार्य मेधाव्रत, अनु.- सत्यव्रत शास्त्री, हरियाणासाहित्य संस्थान, 2010
3. औचित्यविचारचर्चा- क्षेमेन्द्र, व्या.- नारायण मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टलिया, दिल्ली, 1982
4. औचित्यविचारचर्चा- क्षेमेन्द्र, व्या. – आचार्य ब्रजमोहन झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992
5. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि (अभिनव भारती टीका सहित), सं. – डॉ. रविशंकर नागर, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1989

(आ) हिन्दी-ग्रन्थ

1. आचार्य क्षेमेन्द्र- मनोहरलाल गौड, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1989
2. अलङ्कारशास्त्र का इतिहास - डॉ. कृष्ण कुमार, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2003
3. औचित्य सिद्धान्त एवं किरातार्जनीयम्- डॉ. वेद प्रकाश डिंडोरिया, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010
4. औचित्यविचारचर्चा- प्रो. वेदप्रकाश डिंडोरिया, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, शिवालिक प्रकाशन 2022

5. क्षेमेन्द्र- प्रो. ब्रजमोहन चतुर्वेदी, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1983
6. क्षेमेन्द्र एवं उनका समीक्षा सिद्धान्त- डॉ. शिवशेखर मिश्र, कुमार प्रकाशन, लखनऊ, 1974
7. क्षेमेन्द्र साहित्य में प्रतिबिम्बित भारत- डॉ. जे.पी. निगम, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2000
8. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन और कार्य- डॉ. भवानी लाल भारतीय, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1993
9. महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र- पण्डित लेखराम, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1997
10. स्वामी दयानन्द का राष्ट्रवाद और स्वराज्य- डॉ. के. सी. यादव, हरियाणा साहित्य अकादमी, हरियाणा, 1988

इ) आंग्ल ग्रन्थ

1. An Introduction to Indian Poetics - Ed. Prof. V. Raghavan & Prof. Nagendra, Macmillan and Company Limited, Madras, 1970
2. Cultural Trends in Kashmir and Ksemendra - Dr. N.S. Shukla, Nirman Publication, Delhi, 1990
3. Highways and Byways of Literary Criticism in Sanskrit- S. Kuppaswami Shastri, Research Institute, Madras, 1945
4. Ksemendra- Rajatbaran Dattaray, Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta, 1974
5. The Number of Rasas- V. Raghavan, The Adyar Literary and Research Centre, Madras, 1975
6. Dayanand Saraswati: His Life and Ideas- J.T.F. Jordens. R. Dayal, Oxford University Press Delhi 1978

(ई) डिजिटल शोध पोर्टल

1. शोधगंगा- Shodhganga.inflibnet.ac.in
2. इंटरनेट आर्काइव- archive.org.
3. ई-ज्ञानकोश एवं डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इण्डिया- ndl.gov.in.

¹ अलङ्कारास्त्वलङ्कारा गुणा एव गुणाः सदा।

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥ औचित्यविचारचर्चा कारिका संख्या 5

उचितस्थानविन्यासादङ्कृतिरलङ्कृतिः।

औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणाः।। औ. का. सं. 6

² औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।

रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना।। औ. का. सं. 2

³ औ. का. सं. 7

⁴ औ. का. सं. 7

⁵ निष्ठा। अष्टाध्यायी 3.2.102

⁶ रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच्। शब्दकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ.220

⁷ पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलङ्करणे रसे।

क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे।।

उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते।

तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे।।

प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्यथाशिषि।

काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम्।। औ. का. सं. 8-10

⁸ औ. का. सं. 16

⁹ दयानन्ददिग्विजय 5/33

¹⁰ द. दि. 1/21

¹¹ द. दि. 1/43

¹² द. दि. 9/31

¹³ द. दि. 2/18

¹⁴ द. दि. 9/10

¹⁵ द. दि. 6/17

¹⁶ द. दि. 9/75

¹⁷ द. दि. 7/99

¹⁸ द. दि. 1/9

¹⁹ द. दि. 2/59

²⁰ द. दि. 3/60

²¹ द. दि. 8/9

²² द. दि. 6/48

²³ द. दि. 7/47

²⁴ द. दि. 16/14